



द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से, मार्गदर्शन विषय सम्बन्धित
पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के
चयन किये गये वचनामृत

‘खुद ही से काम होगा’ यह तो पहले ही पक्का हो जाना चाहिए। खुद का बल आए बिना तो (अन्य) कोई आधार (उपाय) नहीं है। ४२६.

‘पहले मैं सब समझ लूँ (धारणा कर लूँ) पीछे प्रयास करूँगा’ – ऐसे तो कार्य होगा ही नहीं। (अंतर –) प्रयास तो सुनते ही चालू हो जाना चाहिए। फिर थोड़ी रुकावट आवे तो उसे दूर करने के लिए सुनने-समझने का भाव आता है; परंतु ‘मैं वर्तमान में ही परिपूर्ण हूँ’ – वहाँ चोंटे (वलगे) रहकर ही सब प्रयास होना चाहिए – वहाँ से तो छूटना ही नहीं चाहिए। ४२८.

परिणाम में बैठे हो तो द्रव्य में बैठ जाना है। परिणाम तो कम्पायमान है; द्रव्य निष्कम्प है। काँपनेवाले परिणाम के आश्रय से कम्पित ही रहोगे; निष्कम्प द्रव्य के आश्रय से निष्कम्पता होगी। ४३०.

संग करने का भाव आवे, तब भी ‘संग नहीं करना है’ – ऐसा भाव कायम (मुख्य) रख कर ही संग का भाव होना चाहिए। (‘असंग ही हूँ’ ऐसी दृष्टि रखकर अथवा ऐसी दृष्टि करने हेतु सत्संग की भावना रहनी चाहिए।) ४३१.

असल में द्रव्य का (भावभासनपूर्वक) पक्का (यथार्थ) पक्ष आ जाना चाहिए। अनादि का पर्याय-पक्ष छूट जाना चाहिए। ४३८.

प्रश्न :- अंदर में तो कुछ दिखता नहीं और स्थिरता होती नहीं, इसलिए सुनने का भाव (अभिप्राय) रहता है।
- क्या करें ?

उत्तर :- इसमें तो व्यवहार श्रद्धा भी नहीं आई। ‘सुनने का अभिप्राय ही नहीं होना चाहिए।’ (सुनने का राग होना और अभिप्राय होना – इन दोनों में बहुत फर्क है।) सुनते ही इधर का (अंतर्मुखता का) प्रयास चालू हो जाना चाहिए। (तत्त्वश्रवण के संबंध में ऐसा अभिप्राय रह जाना कि श्रवण करते-करते आत्मलाभ हो जाएगा तो वह साधनविषयक बद्धिपूर्वक की भूल है जिससे गृहीतमिथ्यात्व होता है। जिसका सुनते ही प्रयास चालू होता है, ऐसे वर्तमान पात्र जीव के वैसी भूल नहीं होती। यद्यपि सुनने का राग छद्मस्थअवस्था तक संभव है तथापि यथार्थता में किसी भी राग का अभिप्राय नहीं होता। राग व राग के अभिप्राय में दिन-रात जितना अंतर है।) ४३९.

सोचते रहनेसे तो जागृति नहीं होती, ग्रहण करनेसे ही जागृति होती है। सोचने में तो वस्तु परोक्ष रह जाती है

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६: अंक-२८२, वर्ष-२४, जून-२०२१

आषाढ कृष्ण ९, मंगलवार, दि. १२-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-८४ प्रवचन-३२

भगवान आत्मा किसी का कारण नहीं है और किसी का कार्य नहीं है - ऐसा उसका अनादि-अनन्त गुण है। आत्मा में अकार्यकारण नाम का गुण अनादि-अनन्त है। ऐसा एक गुण है तो सब गुण ऐसे हैं और पूरा द्रव्य ऐसा है। समझ में आया? अध्यात्म की अन्दर की बातें जरा ग्राह्य होने को पुरुषार्थ बहुत चाहिए, तब ख्याल में आता है। आहा...हा...! है?

वस्तु, वस्तु किसी की निमित्त कहाँ होगी? वस्तु के स्वभाव में अकार्यकारण नाम की शक्ति अनादि-अनन्त पड़ी है। जैसे, भगवान आत्मा में ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, अस्तित्वगुण है, ऐसे अकार्य-कारण नाम का त्रिकाल उसमें रहा हुआ गुण अनादि अनन्त है। वह द्रव्य वस्तु, गुण वस्तु और उसकी पर्याय, हाँ! किसी का कार्य नहीं और वह पर्याय किसी का कारण नहीं। आहा...हा...! क्यों? कि अकार्य-कारण नाम का गुण है - ऐसी जब द्रव्यदृष्टि हुई तो द्रव्य में अनन्त गुण है तो अकार्यकारण गुण का भी परिणमन हुआ। क्या कहा, समझ में आया? सैतालीस शक्ति जो प्रकाशित होगी वह बहुत अच्छी निकलेगी। आत्मप्रसिद्धि में छपे हैं परन्तु अभी सैतालीस शक्तियों के व्याख्यान हुए हैं, वे बहुत अच्छे हुए हैं। धीरे-धीरे बाहर आयेंगे। सैतालीस शक्तियाँ नयी छपेगी। आत्मा में अकार्य-कारण नाम का गुण है,

ऐसे गुण का धारक द्रव्य है, ऐसे अखण्ड अभेद द्रव्य की दृष्टि हुई तो जितने अनन्त गुण हैं, उन सभी गुणों का परिणमन उनकी पर्याय में आया। द्रव्य अकार्यकारण है, गुण अकार्यकारण है, पर्याय भी अकार्यकारण है। आहा...हा...! समझ में आया?

यह तो भगवान का घर है, उसे जानने के लिए पुरुषार्थ की उग्रता चाहिए। आहा...हा...! यह धर्म कोई साधारण चीज नहीं है, जिसके फलस्वरूप सादि अनन्त सिद्ध पद आनन्द प्रगट होता है। आहा...हा...! जिसके फल में सादि अनन्त... भूतकाल की पर्यायों से भविष्य की सादि-अनन्त अनन्तगुनी पर्यायें हैं। संसार की पर्याय की संख्या से सिद्ध की पर्याय की संख्या अनन्तगुनी है। अनन्तगुनी... अनन्त... अनन्तगुनी है। आहा...हा...! ऐसे आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्दरूप जिसका फल, उस धर्म की क्या महत्ता! और वह धर्म जिसके आश्रय से प्रगट हो उस द्रव्य का क्या कहना!! समझ में आया?

कहते हैं, किसी का उपादान नहीं और किसी का निमित्त नहीं। वह भगवान ज्ञायक तो पिण्ड है न! अपने आत्मा में, द्रव्य में ऐसी शक्ति है। जब उस शक्ति की प्रतीति, ज्ञान हुआ तो सर्व गुणों की पर्यायों का परिणमन हुआ तो अकार्यकारण नामक गुण अकेला द्रव्य-गुण में नहीं रहा; पर्याय में भी अकार्यकारण (परिणमन आया)।

द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त हो गया। निर्मलानन्द भगवान की जो पर्याय है, उसकी जो दृष्टि हुई तब वह पर्याय किसी का कार्य नहीं और किसी का कारण नहीं।

समझ में आया? समझने में इसे (ऐसा लगता है कि) यह क्या है? मूल तो इसे अन्दर में स्वतन्त्रता की बात रुचती नहीं है, अनादि से पराधीन पंगु... पंगु... पंगु... (जैसा हो गया है)। भगवान पंगु समझते हो? आँखें ऐसी हों, हाथ-पैर ऐसे हों, शक्तिरहित ऐसे पंगु पड़े हों।

यह तो भगवान आत्मा सिंह, उसका एक-एक (गुण)

ओ...हो...! समझ में आया? वह सिंह की लड़ाई की बात आयी थी, दो बाघ थे, बड़े बाघ! एक बाघ पर दूसरा बाघ चढ़ गया परन्तु बाघ ने मारा नहीं, इतना तो पशुओं में भी ख्याल है। ऊपर चढ़ बैठे फिर वह निकलने का था, तब ऐसे गर्दन कर ली, नीचे कर ली, हो गया, जाओ, वह कहे हारा, और यह कहे जीता। छोटाभाई ने कहा - यह कल समाचार पत्र में आया है। 'जैनदर्शन' में, 'जैन सन्देश' कल आया है न! उसमें है। है?

मुमुक्षु : हार स्वीकार हो गयी।

उत्तर : हार स्वीकार हो गयी। पहले तो बहुत लड़े, बहुत लड़े। एक बाघिन थी, बैठी थी, देखती रही, बस! जैसे साक्षी हो ऐसे देखती। एक की बाघिन थी। दो ऐसे लड़े-झगड़े, लहुलुहान! लोही कहते है न? फिर चढ़ गया, वह विजेता था न? उसके ऊपर बैठा, मुँह ऐसा... ऐसा करे परन्तु काटे नहीं...। दूसरा चला गया। कल 'जैन सन्देश' में आया है। पशु में भी इतना (स्वीकार आता है कि) वह हार मानता है।

आत्मा जब अपना विजेता हुआ तो सब हार गये। राग, पर्यायभेद सब हार गये। भगवान आत्मा... में अकार्यकारण स्वभाववन्त हूँ, मैं किसी के कारण से

उत्पन्न पर्याय हूँ ऐसा नहीं, पर्याय, हाँ! और मेरी पर्याय किसी के कार्य में कारण होवे - ऐसा मैं हूँ ही नहीं। ओ...हो...! आत्मा के विजेता का यह लक्षण है।



'संसारदशा में आत्मा... कषाय के उदय से शुभाशुभ उपयोगवाला होता है। यह योग और उपयोग ही लौकिक कार्यों में निमित्त है। कुम्हार घड़ा बनाता है वहाँ मिट्टी घड़े का उपादान कारण है, कुम्हार के मन-वचन-काया का योग और अशुद्ध उपयोग

निमित्तकारण है।' यह तो ठीक। 'शुद्ध आत्मा में न योगों का कार्य है, न कोई शुभ या अशुभ उपयोग है।' भगवान आत्मा, अपनी जहाँ दृष्टि-ज्ञान और रमणता अपने में करे तो वहाँ न योग है, न इच्छा है। समझ में आया?

'आत्मा स्वभाव से अकर्ता और अभोक्ता है।' भगवान आत्मा तो राग का भी कर्ता-भोक्ता स्वरूप में नहीं है। पर का कर्ता तो कहाँ है? (लोगों में) गजब बात चलती है। कोई पूछनेवाला ही नहीं होता, अरे...रे...! प्रभु! करे किसे? भगवान आत्मा, राग को करे? क्या राग उसकी शक्ति में पड़ा है? उसके स्वभाव की खान में राग पड़ा है? राग का कर्ता होता है तो उसका अर्थ हुआ कि पूरा द्रव्य विकारी है (परन्तु) ऐसा है नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध अनाकुल आनन्दकन्द है, वह तो राग का भी कर्ता और राग का भोक्ता वस्तु में है ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? तो पर का कर्ता और भोक्ता तो (कहाँ से होगा)? आहा...हा...! पर की दया पालने का शुभभाव हो परन्तु वह शुभभाव स्वभाव में नहीं है और उस शुभभाव से उसमें कार्य नहीं होता। उस शुभभाव से पर में दया का कार्य नहीं होता और शुभभाव

से, अपनी निर्मल पर्याय का कारण शुभभाव हो और कार्य हो - ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! सर्वज्ञ नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। सर्वज्ञ ने कुछ किया है? बनाया है? जैसा है, वैसा सर्वज्ञ ने जाना; जाना वैसा वाणी में आया; आया वैसा है। आहा...हा...!

कहते हैं, भगवान! तू तो आत्मा है न प्रभु! तो आत्मा में तो महान... महान... महान... पवित्रता पड़ी है न प्रभु! उस पवित्रता का धाम भगवान है। उस पवित्रतारूप से परिणमित, वह परिणमन हुआ, वह भी उसका व्यवहार हुआ। आहा...हा...! है? वह परिणमन उसका व्यवहार है और ध्रुव उसका निश्चय है।

कहते हैं कि भगवान आत्मा स्वभाव से तो अकर्ता-अभोक्ता है। रजकण का, पर की दया का (भाव), पर को बचाने का-मारने का कर्ता भगवान आत्मा नहीं होता। भाई! ऐसा नहीं होता भाई! यह भगवान को कलंक चढता है, उसमें जो स्वभाव नहीं है, उसे ऐसा कहना, प्रभु! उसे कलंक लगता है, भाई! तुझे कलंक लगता है, बापू! उस कलंक का फल, भाई! नुकसानकारी है परन्तु अब यह बात कैसे हो? यह कोई किसी की दी जा सके ऐसी नहीं है।

भगवान आत्मा ज्ञायक का पिण्ड प्रभु, जिसमें अकर्ता-अभोक्ता नाम का गुण है परन्तु राग का कर्ता और पर का कर्ता - ऐसा कोई गुण नहीं है, तो पर्याय भी नहीं है। यह तो भगवान के देश की बात है। समझ में आया? परदेश में से निकलना हो और स्वदेश में आना हो, उसकी बात है। भगवान आत्मा महान जिसकी शक्ति, कहते हैं कि शक्ति है परन्तु उस शक्ति में कोई एक शक्ति ऐसी नहीं है कि राग की रचना करे, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, शुभ उपयोग की रचना करे - ऐसा कोई गुण नहीं है। शुभ उपयोग को रचे ऐसा कोई गुण नहीं है तो पर की पर्याय को रखे या मिटाये, उत्पाद करे या व्यय करे, जिवाना अर्थात् उत्पन्न और मरण अर्थात्

व्यय, भगवान! वह आत्मा में नहीं है। भाई! उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में तीनों में नहीं है। समझ में आया? ऐसे आत्मा को जाने, तब आत्मा जाना कहा जाता है। आत्मा ऐसा है और उससे विपरीत जाने तो आत्मा को जाना ही नहीं। समझ में आया?

‘वह न तो परभावों का कर्ता है, न परभावों का भोक्ता है।’ सर्वविशुद्धि में आया है न? भाई! यह लिया है। ‘आत्मा स्वभाव से अपनी शुद्धपरिणति का कर्ता है...’ यह भी व्यवहार हुआ। आत्मा में अपनी पर्याय, आत्मा कर्ता और पर्याय कर्म, यह भी उपचार / व्यवहार हुआ। ‘सहज शुद्ध सुख का भोक्ता है...’ भगवान आत्मा परमानन्द से भरपूर है। अतीन्द्रिय आनन्द का भाव चैतन्य में ठसाठस भरा है, अरूपी के लिए बड़े क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है। वह तो इसमें महा सामर्थ्य है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का रस-कश... सम्पूर्ण असंख्य प्रदेशों में सराबोर... सराबोर है। जैसे अतीन्द्रिय आनन्द का भोक्ता है। आहा...हा...! यह भी व्यवहारनय से भेद डालकर कहते हैं।

मुमुक्षु : ठसाठस...।

उत्तर : ठसाठस अर्थात् उसमें दूसरे किसी के प्रवेश होने का अवकाश नहीं है। अरूपी भी दल है या नहीं? क्या? जैसे बर्फ की शिला है। बर्फ की शिला में भी अवकाश है, क्योंकि भिन्न-भिन्न स्कन्ध है, भिन्न-भिन्न स्कन्ध है तो उनमें भी अवकाश है। थोड़ा खाली भाग है। भगवान आत्मा के असंख्य प्रदेश में कोई खाली भाग है ही नहीं। अखण्ड पिण्ड और अनन्त गुण का रसकन्द है। उसमें आकाश के एक प्रदेश में बीच में अवकाश है ऐसा है ही नहीं। आहा...हा...! बर्फ की शिला, समझे। तुम्हें ऐसा लगता है कि बर्फ ऐसा ठसाठस है। अन्दर में आकाश के असंख्य प्रदेश, बहुत सूक्ष्म (प्रदेश) खाली रह जाते हैं। ऐसी बात है। क्योंकि अनन्त स्कन्ध हैं। अनन्त परमाणुओं का एक द्रव्य कहाँ है? स्कन्ध के

अन्दर अवकाश रह जाता है। भगवान आत्मा में एक-एक गुण में कोई एक प्रदेश का अवकाश / खाली नहीं है। पूरा अभेद एकाकार (द्रव्य) पड़ा है परन्तु वह आत्मा क्या चीज है? उसे इसने समझ में लिया ही नहीं। आत्मा का क्या माहात्म्य है! वह तो परमात्मा का गर्भ है, उसमें से परमात्मा का प्रसव होता है। आहा...हा...! परमात्मा की प्रसूति का घर आत्मा है।

मुमुक्षु : कितने?

उत्तर : अनन्त। आत्मा अनन्त परमात्मा का प्रसव करता है। एक समय का परमात्मा, दूसरे समय का परमात्मा... परमात्मा पर्याय है या नहीं? सिद्ध पर्याय है या नहीं? सिद्ध एक समय की परमात्मा की पर्याय है। दूसरे समय दूसरा परमात्मा, तीसरे समय तीसरा... भले ही वही है, परन्तु है दूसरी पर्याय; ऐसे सादि अनन्त परमात्मा (होवे उन्हें) आत्मा ने अपने गर्भ में रखे हैं, पेट में रखे हैं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : पेट खोलकर निकाले तो निकले न।

उत्तर : एकाकार होवे तो निकले बिना रहेगी नहीं। है? आहा...हा...! वस्तु तो ऐसी है। इस घड़ी क्या आज ही, ऐसा कहते हैं। 'अमृतचन्द्राचार्य' 'प्रवचनसार' में अन्त में दो गाथाओं में कहते हैं। आज। भाई! बताया था, नहीं? प्रवचनसार में अन्त में है। आज ही करो, आज ही करो। टाइम की क्या बात है, देखो! अन्त में है, अन्त में। देखो! (श्लोक २१) 'एक सम्पूर्ण शाश्वत स्व तत्त्व को प्राप्त करके आज ही अव्याकुलपने नाचो।' 'अद्य' है न? 'वल्गात्वद्य' कहते हैं कि 'वास्तव में पुद्गल ही स्वयं शब्दरूप से परिणमते हैं, आत्मा उन्हें नहीं परिणमा सकता...' भाषा को आत्मा तीन काल में नहीं कर सकता। इसलिए ऐसा नहीं जानो कि यह टीका मैंने की है। अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं।

मुमुक्षु : वह तो अभिमान नहीं है, इसलिए कहते हैं।

उत्तर : अभिमान नहीं; कर ही नहीं सकता - ऐसा

कहते हैं। कर तो सकता है परन्तु अभिमान नहीं करना - ऐसा लोग कहते हैं, हाँ! भगवान! ऐसा नहीं है। भाई! कर नहीं सकता क्योंकि परमाणु की पर्याय स्वतन्त्र है। अनन्त परमाणुओं में एक-एक में अनन्त गुण की पर्याय का उत्पाद उस समय में होता है। आत्मा क्या करे?

'स्वयं ज्ञेयरूप प्रमेयरूप परिणमते हैं, शब्द उन्हें ज्ञेय बना कर - समझा नहीं सकते। इसलिए आत्मा सहित विश्व वह व्याख्ये (समझाने योग्य) है, वाणी की रचना वह व्याख्या है और अमृतचन्द्र सूरी व्याख्याता (व्याख्या करनेवाले समझानेवाले) हैं। ऐसे मोह से मत नाचो।' आहा...हा...! हे जीवों! ऐसा मत मानो, मैंने व्याख्या की, शब्द किये - ऐसा मत मानो। प्रभु! यह तो भाषा में स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है और आत्मा में स्व-पर को जानने की ताकत है। भगवान आत्मा में स्व-पर को जानने की ताकत है, वाणी में आत्मा या निमित्त की अपेक्षा बिना स्व-पर को कहने की ताकत है। निमित्त की अपेक्षा होवे तो स्व-पर को कहने की ताकत कहाँ रही? समझ में आया? भाई! केवलज्ञान निमित्त है न, इसलिए भाषा में ताकत आयी (-ऐसा) बिल्कुल नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो सूचित करता है केवलज्ञान।

उत्तर : वह तो केवलज्ञान सूचित करता है परन्तु केवलज्ञान है, इसलिए भाषा में, दिव्यध्वनि में स्व-पर वार्ता कहने की पूर्ण ताकत आयी - ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहा...हा...!

'स्याद्वाद विद्या के बल से विशुद्धज्ञान की कला से यह एक सम्पूर्ण शाश्वत् स्व तत्त्व को प्राप्त करके आज ही (जनों) अव्याकुलरूप से नाचो। (परमानन्द परिणाम से परिणमो)।' प्रभु! आज ही, आज ही शब्द है। दूसरे में (श्लोक २२ में) भी ऐसा लिया है। 'आज ही प्रबलरूप से उग्ररूप से अनुभव करो...' 'उस चैतन्य को ही चैतन्य आज

ही प्रबलरूप से उग्ररूप से अनुभव करो...' वहाँ आज है। 'अनुभवतु तदुच्चैश्चिच्चिदेवाद्य यस्माद्' अन्तिम श्लोक में है। आज, दूसरा समय क्या? आहा...हा...! वायदा करता है, वह कर्जदार वायदा करते हैं न! पचास हजार का कर्जा होवे तो किस्त करते हैं न? किस्त अर्थात् क्या? एक महीने पाँच सौ भरूँगा, दूसरे महीने पाँच सौ भरूँगा। हफ्ता! नहीं, यह वायदा है। साहूकार ऐसा करेगा? (वह तो यह कहेगा) ले, ले जा... ऐसे भगवान आत्मा ऐसे पूर्णानन्द से भरपूर अभेद प्रभु, वह किसी का कर्ता-हर्ता नहीं है - ऐसा अभी स्वीकार ले, वायदा नहीं। वायदा कैसा? भगवान (आत्मा) के स्वरूप में वायदा है? समझ में आया?

(यहाँ कहते हैं कि) 'यह आत्मा परम निराकुल और समभावधारी परम पवित्र, निश्चल रहनेवाला है। वह परमपदार्थ परमात्मा है। मैं ऐसा ही हूँ, ऐसा निश्चय अनुभवपूर्वक होना, वही सम्यग्दर्शन गुण का प्रगट होना है।' कल्पना से नहीं, बाहर से नहीं, शास्त्र की धारणा से नहीं, शास्त्र के ज्ञान से नहीं... आहा...हा...! अन्तर भगवान आत्मा, ऐसे पूर्ण स्वरूप का अन्तर अनुभव करके सम्यग्दर्शन गुण का प्रगटना है। 'वह मिथ्यात्व कर्म और अनन्तानुबन्धी कषाय के उपशम बिना नहीं होता।' वह सम्यग्दर्शन मिथ्यात्वकर्म और अनन्तानुबन्धी का उपशम (होवे तब होता है) यह जब सम्यग्दर्शन होता है, तब वहाँ उपशम होता ही है। न हो ऐसा नहीं होता।

'शास्त्रों को ठीक-ठीक जानने पर भी जहाँ तब स्वानुभव न हो वहाँ तक ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता है।' शास्त्र के ज्ञान को बराबर समझता हो परन्तु वह भी पर ज्ञान है। अभी तो शास्त्र के ज्ञान का ठिकाना नहीं। अरे... भगवान! कठिनता से थोड़ा समय मिला, अनन्त काल में यह समय बहुत थोड़ा समय है, हाँ! मनुष्यपने का समय बहुत थोड़ा है, भाई! महा कठिनता से समय मिला इसमें फिर ऐसे का ऐसे रुक

जायेगा तो तेरे कल्याण का काल चला जाएगा। छोड़ दे, हम ऐसा करते हैं और अभी तक माना, माना छोड़ न! सत्य को ले न! उसमें क्या है।

कहते हैं, 'शास्त्रों को ठीक-ठीक जानने पर भी जहाँ तब स्वानुभव...' 'अनुभव रत्न चिन्तामणि अनुभव है रसकूप अनुभव मारग मोक्ष का अनुभव मोक्षस्वरूप' बस! अनुभव एक ही मोक्ष का मार्ग है। रत्नत्रय उसमें (होता है)। अनुभव - भगवान जैसा है, उसे अनुसरण कर दशा में होना, वेदन में आना - ऐसे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को अनुभवो। 'सम्यग्दर्शन के प्रकाश होते ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है। मुमुक्षु को उचित है कि आत्मा के श्रद्धान व ज्ञान में बार-बार रमण करे।' यह चारित्र। 'बार-बार भावना भावे। भावना में चलना सो चारित्र है।' भावना में रहना, वह चारित्र है। 'जहाँ आत्मा आपसे आप में स्थिर हो जाता है, वहाँ रत्नत्रय की एकता होती है। वही मोक्षमार्ग है। रत्नत्रय धर्म निज आत्मा का स्वभाव ही है।' लो! 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहा है अपने आत्मा का निश्चय, वह सम्यग्दर्शन है।' 'दर्शनमात्मविनिश्चिति' भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में फरमाते हैं। महा अमृतचन्द्राचार्यदेव... आहा...हा...! अभी नौ सौ वर्ष पहले भरतक्षेत्र में थे, ऐसे चलते थे, भिक्षा / आहार के लिए जाते थे, आहा...हा...! वे तो सिद्ध... सिद्ध! विकल्प बाहर, शरीर बाहर, अभी तो नौ सौ वर्ष पहले... भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव अकेले अमृत का घोलन करनेवाले! कहते हैं आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन, 'अपनी आत्मा का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, अपने आत्मा में स्थिरता सम्यक्चारित्र है, इन तीनों से कर्म बन्ध नहीं होता।' समझ में आया?



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके वचनामृत-२२५ पर भाववाही प्रवचन, दि. २३-४-१९८३, प्रवचन क्रमांक-९५ (विषय : मार्गदर्शन)

पुण्यसे आत्मा प्राप्त होती है—यह तो आत्माको गाली देना है। इसे प्राप्त करनेका साधन तो अंतरमें ही निहित है। यह कोई पंगु तो है नहीं। २२५.

(परमागमसार, बोल) २२५। 'पुण्यसे आत्मा प्राप्त होती है—यह तो आत्माको गाली देना है। इसे प्राप्त करनेका साधन तो अंतरमें ही निहित है। यह कोई पंगु तो है नहीं।' साधन, साधन यानि करण। साधन यानि करण। एक करण नामकी शक्ति है। यह सब इसमें से है, ज्ञानगोष्ठीमें से है। यहाँ से शुरू होते हैं, १७२ गाथाके (प्रवचन)। ४६ नंबरके पृष्ठ से है। २५४ है न, वहाँसे प्रवचनसार १७२ गाथाके शुरू होते हैं।

मुमुक्षु :- इतने सुंदर वचनामृत आये हैं न।

पूज्य भाईश्री :- यह सब तो नवनीत-नवनीत है।

क्या कहते हैं? कि सामान्यतः धर्मसे अनजान जीवोंको ऐसा गलत खयाल है कि पुण्यसे धर्म होता है। पुण्य हो तो ऐकेन्द्रियमें से पंचेन्द्रिय हो, पुण्य हो तो उसे देव-गुरु-शास्त्रका योग हो, पुण्य हो तो जैनकुलमें जन्म हो, पुण्य हो तो उसे ज्ञानीका, तीर्थकरका, समवसरणका योग हो और पुण्य हो तो सत्शास्त्रका उसे संयोग हो। अतः पुण्य हो तो काम होता है। कहते हैं कि इस तरह आत्माके स्वरूपका स्वीकार करनेवालेने आत्माको

बिल्कुल पंगु एवं निर्माल्य मान लिया है कि मानो उसमें कोई शक्ति है ही नहीं।

जिसने आत्माकी शक्ति देखी और प्रगट करके अनुभव किया वह ऐसा कहता है कि तेरे स्वकार्यके लिये, तेरे निजके लिये कोई साधनांतरकी तुझे अपेक्षा नहीं है। तू पंगु नहीं है। अन्दरमें साधन नामकी, करण नामकी शक्ति पड़ी है। कितनी है? उसका सामर्थ्य कितना है? कि अनंत, अनंत सामर्थ्य। साधन भी अनंत सामर्थ्य स्वरूप तेरा साधन तेरेमें विद्यमान मौजूद है। कब है? कि सदा है। तुझे भान नहीं है इसीलिये तू अन्य साधनको खोज रहा है, अन्य साधन मानता है और अन्य साधनको पराधीनपने आश्रय करके तेरा हित करना चाहता है। यह एक भ्रांति है, बहुभाग यह भ्रांति है।

मुमुक्षु :- हम उसीमें ही थे न।

पूज्य भाईश्री :- वह तो हर जगह ऐसा ही है। जब तक यह बात प्रकाशमें नहीं आयी थी, तब तक सबको ऐसा ही था कि पुण्य करेंगे तो कुछ प्राप्त करेंगे, पुण्य करेंगे तो कुछ प्राप्त करेंगे।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- परन्तु कहनेमें धर्म तो हुआ

नहीं। पुण्यशाली तो बहुत कहलाते हैं। मांस-मच्छी एवं मदिरापान करनेवाले पुण्यशाली कहलाते हैं कि नहीं इस दुनियामें? ये सब पुण्यशाली है ऐसा नहीं कहते? उसकी कीमत क्या? उस पुण्यकी कीमत क्या? जिस निकृष्ट परिणाम हो ऐसे जीवोंका पुण्योदय हो तो उस पुण्योदयकी कीमत क्या? ऐसा कहता हूँ। उस पुण्योदयकी कोई कीमत नहीं है।

मुमुक्षु :— पुण्यानुबंधी पुण्य...?

पूज्य भाईश्री :— पुण्यानुबंधी भी पुण्यतत्त्व है, उसकी भी कोई कीमत नहीं है, यहाँ तो ऐसा लेना है। पापानुबंधी पुण्यकी तो कोई कीमत नहीं है परन्तु पुण्यानुबंधी पुण्य हो तो भी उससे आत्माकी प्राप्ति है ऐसा नहीं है। वह पुण्यतत्त्व है। आत्मा पंगु नहीं है ऐसा कहते हैं। जो अनंत शक्तिधारक है, अनंत शक्तिसंपन्न है उसे निर्माल्य और पंगु मानना यह बड़ा अनादर है, वह अपने निज सिद्धपदका, निज परमात्मपदका अनादर है, उसका अपमान है, उसे गाली देनेके बराबर है।

मुमुक्षु :— बाह्यके पुण्य तो मनुष्यगतिमें होते हैं और सम्यग्दृष्टि तिर्यचमें होते हैं।

पूज्य भाईश्री :— तिर्यचमें होते हैं। क्या पुण्यकी इतनी कीमत है कहिये? पुण्यकी कीमत कितनी? तो इस परसे ऐसा नक्की होता है, विचारणासे यह तो एक निर्णय कर लेने जैसा है कि जगतमें पुण्य-पाप एवं उसके फलकी कोई कीमत नहीं है। अनंत बार द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और भव पाँच परावर्तनमें सब प्रकारके पुण्य और सब प्रकारके पापका उदय उसे आ चुके हैं। मिथ्यादृष्टिके हो उतने, हाँ! सम्यग्दृष्टिको जो पुण्य होता है ऐसा तो मिथ्यादृष्टिको होता नहीं। इसीलिये इतना अपवाद रखकर (बात है)। मिथ्यादृष्टिको उत्कृष्ट पुण्य और मिथ्यादृष्टिको उत्कृष्ट पाप हो। जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट सब भेदमें वह आ चुका है। उसने एक भी बाकी नहीं रखा। तभी तो उसे पंच परावर्तनके फलकी प्राप्ति हुई है। यह तो बराबर है

कि नहीं?

अब, वह सब जूठन है कि और कुछ है? एकबार खाया हुआ पुनः खाना, वह सब तो जूठन है। उसकी कीमत कितनी? जूठनकी कीमत कितनी? कि अति दरिद्री हो, उसे उसकी कीमत है। जूठनकी कीमत किसे है? जूठनमें से लेकर खानेवाले है कि नहीं? कौन खाता है वह? अति दरिद्री हो वह। परिणाममें जो अति दरिद्री है उसे उसकी कीमत है। पुण्य-पापकी जो कीमत करता है वह तो अत्यंत दरिद्र मानसवाले जीव हैं। अनंत सामर्थ्य, अनंत ऐश्वर्यको धारण करनेवाला भगवान आत्मा ईश्वर कहलाया, भगवान कहलाया, उसे ऐसी दरिद्रता शोभा नहीं देती, ऐसी दरिद्रता उसे शोभा नहीं देती।

सोगानीजीने तो इससे भी ज्यादा कड़क लिखा है। वह बात बीचमें स्मरणमें आ गयी कि मुक्ति द्वारा आत्माकी पहचान करवानी, आत्माको मुक्ति कहना वह गाली देनेके बराबर है। यहाँ तो पुण्य लिया है, लेकिन वहाँ तो मोक्षतत्त्व लिया है। ठीक! परिपूर्ण शुद्धि है मोक्ष तो। भगवान आत्माकी पहचान उसके द्वारा मत दे तू, वह कलंक है। जो अनादिअनंत बंधा हुआ नहीं है ऐसा जो परमात्मा अन्दरमें, जिसे बंध-मोक्षके परिणामकी सापेक्षता नहीं है, उससे अभावस्वरूप, उससे शून्य एवं उससे रहित है। जो जेलमें गया ही नहीं उसे छूटनेका अभिनंदन देने जाये तो उसे गाली देनेके बराबर, अपमान करने जैसा होता है। ऐसा अपमान नहीं करते। इस प्रकार आत्माकी पहचान करवायी है।

पुण्यके परिणामसे तो आत्माकी पहचान नहीं करवाते परन्तु मोक्षके परिणामसे भी आत्माको पहचाननेकी बात नहीं है। मेरी मुक्ति! ऐसा कहते हैं। यह कैसी भ्रांति? मैं कहाँ बंधा हुआ हूँ? कब बंधा हूँ? मैं मेरे स्वरूपको अन्दरमें देखता हूँ (तो वह तो) त्रिकाल जैसा है वैसा है, बंध-मोक्षकी अपेक्षा जिसे नहीं है। ऐसा तो स्वरूप सदा

है, उसका मोक्ष करना वह प्रश्न कहाँ है? उसका मोक्ष करना वह तो एक नयी भ्रांति हुई, उसका सवाल नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :— पुण्यकी तो बात ही नहीं है।

पूज्य भाईश्री :— पुण्य तो एक ओर पड़ा रहा, परन्तु उसका मोक्ष करनेका सवाल नहीं है। ऐसा लेते हैं।

मुमुक्षु :— मोक्ष...

पूज्य भाईश्री :— हाँ।... धर्मदासजी क्षुल्लक। मोक्ष तो उसके आदि-मध्य-अंतमें नहीं है। फिर बंध की चर्चा करनेका सवाल नहीं रहता। कह गये हैं, ज्ञानी बहुत कह गये हैं।

इसीलिये तो कुन्दकुन्दाचार्यने कहा न, 'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।' प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। है मुनिदशाके लिये। मैं प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं हूँ। वचनामृतमें लिया, पर्यायवेश नहीं है, आत्माको पर्यायवेश नहीं है। गृहस्थपना, मुनिपना, अरे..! केवलज्ञानका भेष आत्माको नहीं है। है उसमें? १०५ नंबर है। पर्यायवेश नहीं है आत्माको ऐसा कहते हैं। ऐसे आत्माकी अन्दर पहचान नहीं हो, पहचानकर महिमा न आये तब तक परिभ्रमण मिटे ऐसा नहीं है। अन्य परिणाम होंगे, होंगे और होंगे ही। अनिष्ट परिणाम हुए बिना (नहीं रहेंगे)। ऐसा पहचाने नहीं, जाने नहीं तब तक उसे अन्यथा परिणाम हुए बिना नहीं रह सकते।

मुमुक्षु :— चार गतिमें परिभ्रमण किये बिना नहीं रहेगा।

पूज्य भाईश्री :— और चार गतिमें परिभ्रमण किये बिना रहेगा नहीं।

आत्माको मोक्ष कहनेसे अपमान होता है, यह विषय परमागममें है। परमात्मप्रकाश, द्वितीय अधिकारकी ६८ गाथा है न। द्रव्यदृष्टिप्रकाशमें द्वितीय भागमें हमने वह प्रवचन लिया है गुरुदेवश्रीका। वह परमात्मप्रकाशकी ६५-६८ गाथा है उसमें वह विषय है। जो आत्मा अनादिअनंत परमात्मा बंधा हुआ नहीं है, उसे मोक्ष

करनेका सवाल नहीं रहता।

जैसे कोई निर्दोष सज्जनको ऐसा नहीं कह सकते कि आप जेलमें से छूट गये इसलिये आपको अभिनंदन देते हैं। अच्छा हुआ आज आप घर आ गये हो। लेकिन भाई, मैं जेलमें गया ही नहीं। तुझे कुछ गलतफहमी हुई है ऐसा लगता है। मैं जेलसे छूटकर आज घर आया हूँ यह बात ही नहीं है। मैं जेलमें गया नहीं, ऐसा कहेगा। ऐसा स्वयं मूलस्वरूपमें है ऐसी उसको पहचान हो तो परिणति सम्यक् है। तो समस्त अनंत गुणके परिणाम सम्यक् है और नहीं तो परिणाममें सम्यक्ता नहीं आती। परिणामकी सम्यक्ताका आधार ऐसा है कि जिसे बंध-मोक्ष नहीं है। वह वास्तवमें आत्मा है।

नियमसारकी ३८वीं गाथामें यह विषय शास्त्र परिभाषासे है कि उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक ऐसे जो प्रकारके परिणाम हैं, पाँचवां प्रकार नहीं है परिणाममें, समस्त संसारी जीवके, प्रथम गुणस्थानसे लेकर अर्हत पर्यंतके सर्व गुणस्थान, चौदहवें गुणस्थान पर्यंतके, वह क्षायिक परिणाम है न, वह इस चार भेदमें समाविष्ट हो जाते हैं। उपशम, क्षयोपशम, और क्षायिक एवं औदयिक। इन चारों प्रकारके परिणामोंके द्वारा जिसे देखने पर, जो अगोचर है ऐसा जो पूजित पंचमभाव, परमपारिणामिकभाव वह वास्तवमें आत्मा है। वहाँ क्या शब्दप्रयोग किया है?

'द्रव्यमें जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है' ऐसा शब्दप्रयोग किया है। टीकाकार पद्मप्रभमलधारीदेव ऐसा कहते हैं कि स्वद्रव्यमें जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है उसे, ऐसे आसन्नभव्य जीवको, ऐसे शब्द लिये हैं, ऐसे आसन्नभव्य जीवको, जिसकी भव्यताका परिपाक हो गया है ऐसे जीवको ऐसा परमपारिणामिकभाव ही वास्तवमें आत्मा है। वह उसका खरा आत्मा है। बाकी सबको आत्मा नहीं कहते। ऐसा निश्चय आत्माका स्वरूप कहा है।

यहाँ कहते हैं कि ऐसा निश्चय आत्मा पुण्यसे प्राप्त हो, रागसे प्राप्त हो, पुण्यसे अर्थात् रागसे प्राप्त हो,

वीतरागस्वरूपी आत्मा रागसे प्राप्त होता है ऐसा कहनेवाला आत्माको गाली देता है। वह अनजान है, गलतीसे आत्माको गाली देते हैं। उसे प्राप्त करनेका साधन तो अन्दरमें पूरा-पूरा पड़ा है। उसे कहीं खोजने जाना पड़े ऐसा नहीं है। अंतर्मुख होकर उसकी सँभाल करनेसे वह शक्ति जागृत हो जाये ऐसा है। और वह शक्ति जागृत हो, उसे कोई रोक नहीं सकता। ये अंतकृत केवली होते हैं, उसमें प्राण छूट जाये ऐसे उपसर्ग होते हैं, परिषह होते हैं,

उससे उनका केवलज्ञान नहीं रुकता। अंतिम अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। इस ओर प्राण छूटे और इस ओर केवलज्ञान प्रगट होता है। अंतिम अल्प अंतर्मुहूर्तमें, अंतिम अंतर्मुहूर्तमें। उसका अर्थ यह है कि बाह्य कोई भी प्रतिकूलताएँ उसकी शक्ति रोकनेमें समर्थ नहीं है। आत्माकी शक्ति अन्दरसे उत्पन्न हो उसे रोकनेमें जगतमें कोई समर्थ नहीं है। इसप्रकार यहाँ उसकी शक्ति भान करवाया है।

दि. ७-५-१९८३, वचनामृत-२३३ प्रवचन क्रमांक-९९

विषय-मार्गदर्शन

जिनके सिर पर जन्म-मरणरूपी तलवार लटक रही है-फिर भी जो संयोगोंमें खुशी मानते हैं, वे पागल हैं। २३३

(परमागमसार बोल-२३३) जिसने जन्म-मरण का अभाव सम्यग्दर्शनपूर्वक नहीं किया है, जब तक मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती, तब तक जन्म-मरण सामने खड़े हैं, उसका नाश नहीं हुआ, उसका छेद नहीं हुआ। ऐसे जन्म-मरण की जो परंपरा है वह जिसके सिर पर खड़ी है, यानि कि मिथ्यात्व का नाश नहीं हुआ, जब कि शुरूआत वहीं से करनी चाहिए। मिथ्यात्व का नाश होने पर (धर्म की) शुरूआत होती है। यह (मिथ्यात्व) जन्म-मरण और परिभ्रमण का कारण है।

यह मिथ्यात्व पर में निजबुद्धि के कारण है। मिथ्यात्व जो है वह परपदार्थ में और परभाव में निजबुद्धि होने से उत्पन्न होता है। वह जीव संयोगों में खुशी मानता है मतलब मिथ्यात्व का विशेषरूप से सेवन कर रहा है। पर में निजबुद्धि (करने से खुशी होता है)। खुशी कब होती है जीव को? जब संयोगों में भी जीव को कल्पना हो

जाये कि ऐसे संयोग मुझे प्राप्त हो गये, अब मुझे दिक्कत नहीं है। वैसे जो अनुकूलता में कल्पना करके खुश होता है, राजी होता है, सर्वस्व है ऐसा मानता है, क्या मानता है उसे? सर्वस्व (मानता) है। उसे जन्म-मरण की परंपरा की कोई दरकार नहीं है, यह सिद्ध हुआ। क्या हुआ इसमें? कि, अब मुझे कब तक जन्म-मरण करने पड़ेंगे? या उसके नाश का मैं कोई उपाय कर लूँ-ऐसी जिसको दरकार नहीं है और जो संयोग आश्रित परिणाम में तन्मयता से परिणमन करते ही जा रहा है, इसमें भी जीव को रस आता है, इसमें भी जीव खुशी होता है, (यह) कहते हैं कि वह जीव पागल है! वह पागलपन है, ऐसा कहते हैं। विवेक नहीं है इसलिए पागल कहा जाता है। जगत में भले ही वह समझदार गिना जाता हो और कहा जाता हो।

लोग कहते हैं न? कि 'पाँच मां पूछाय ऐवा भाई

छे' मतलब भाई में बुद्धि बहुत है और लोग इनकी सलाह लेकर काम करते हैं। वैसे दुनियादारी में भले ही वह समझदार विवेकवंत, बुद्धिशाली, विचारवान कहलाते हो और किसी भी स्थान में हो, फिर भी जिसने जन्म-मरण के नाश की दरकार नहीं की है और वह किये बिना किसी न किसी प्रकार से वह खुश है, संतुष्ट है - कि ठीक है! हमें कोई दिक्कत नहीं है, यहाँ भगवान उसको 'पागल' कहते हैं।

लोगों के समझदार कहने से उसके जन्म-मरण नहीं मिट जाते! लोग मान देवें, हार पहनाये, सन्मान करे, सन्मानपत्र दें, देते हैं न लोग? रिवाज है कि नहीं? इससे कोई जन्म-मरण का नाश नहीं हो जाता या इससे आत्मा में कोई लाभ हो जाये ऐसा नहीं है। इसको लेकर आत्मा में कोई शांति हो, दूसरे मान देवें इससे खुद को शांति हो, सभी संयोग अनुकूल (हो जाये), सारी दुनिया अनुकूलता में बदल जाये तो अंदर में शांति हो, ऐसा कोई प्रकार नहीं है। फिर भी कल्पितरूप से उसमें राजी होना, कल्पना में रत होकर राजी होना वह काम पागल जैसा है। ऐसा यहाँ कहते हैं।

प्रश्न :- वैसे तो यह हर रोज सुनने आते हैं। जन्म-मरण के नाश हेतु तो सुनते हैं ?

समाधान :- जन्म-मरण का नाश मिथ्यात्व के नाश से होगा। ऐसा नहीं कहा कि, हर रोज सुनने से नाश हो जाएगा, हर रोज पढ़ने से नाश हो जाएगा, परंतु भीतर में यदि मिथ्यात्व का नाश हो और सम्यक्त्व प्रगट हो तो नाश होगा, जन्म-मरण का नाश होगा। इसके अलावा सब बाह्य क्रिया में जाता है। जितना भी बाह्य में दिखाव होता है या आत्मा की अंतर्मुख होने की अंतरंग क्रिया के अलावा जितनी भी क्रियाएँ हैं-विकल्प-विचार से लेकर मन-वचन-काया की जितनी भी क्रियाएँ हैं, सब बाह्य क्रिया हैं। भीतर से आत्मा में बदलाव आये नहीं तब तक कोई चीज जीव के खुद के काम की नहीं है, ऐसा है। भीतर से आत्मा में बदलाव आ जाना चाहिए।

इस जगतमें से सुख लेने का जिसको कोई प्रयत्न नहीं करना है, ठीक ! और जो कुछ प्रयत्न है - पुरुषार्थ की पुँजी है, उसका भीतरमें से शांति प्राप्त करने के लिए उपयोग करना है। पुरुषार्थ तो शक्ति है न ! गुणमें से शांति प्रगट करने के लिए जिसको शक्ति का प्रयोग करना है साथ ही किसी अन्य तरीके से - विकल्प से, विचार से, किसी शुभभाव से, किसी अन्य प्रकार के परिणाम से, अन्य द्रव्य से, अन्य भाव से कहीं भी शांति नहीं है, ऐसा जिसको यथार्थ समझ में आया है, यानि कि (गुणमें से सुख लेने) का प्रयत्न जिसका चालू है - ऐसा जिसकी यथार्थ समझ में बैठ गया उसका विपरीत दिशा में प्रयत्न नहीं चलेगा। उलटा प्रयत्न नहीं चलेगा सुलटा ही चलेगा, तब उसके जन्म-मरण का नाश होगा।

क्या भूतकाल में व्यतीत पूर्व भवों में शास्त्र नहीं पढ़ें होंगे? स्वाध्याय नहीं किया होगा? पूर्वानुपूर्व बाहर में तो सब किया ही है। जो रह गया है वह तो अंतर्मुख होकर मिथ्यात्व का नाश नहीं किया है। यानि की जन्म-मरण की तलवार सिर पर लटक रही है, ऐसा कहते हैं। कब गिरेगी, आयुष्य कब पूरा होगा यह पता नहीं है फिर भी जन्म-मरण के नाश का प्रयत्न करने के बजाय संयोग के पीछे दौड़ लगायी है! उदयमान संयोगों में तन्मय होकर परिणामन करके इसमें अनुकूलता की कल्पना मान रखी है। संयोगों में खुशी का अर्थ इतना है कि जो भी प्राप्त उदय है, उसमें जीव को ठीकपने की (कल्पना चलती है) कि ठीक है, यह मुझे ठीक है, इतना तो ठीक है, वैसे इसकी हयाती का स्वीकार करता है, संयोग की हयाती का स्वीकार करता है। जिसमें अपने शुद्ध-बुद्ध चैतन्य की हयाती का स्वीकार रह जाता है, जो इसका अनादर है, वह पागलपन है, बेवकूफी है, मूर्खता भरा कार्य है - ऐसा ही कहलायेगा न? पागल कहो या मूर्ख कहो, ऐसी बात है।

ऐसा कहकर यों कहते हैं कि जागृत होकर तू अपने स्वरूप प्राप्ति के प्रयत्न में लग जा ! अन्य सर्व दिशाओं

से, अन्य सर्व कार्यों से उदास हो जा! सावधानी छोड़कर उदास हो जा! एक ही स्वकार्य में-निजकार्य में सावधान हो जा, ऐसा कहना है। इसमें से तात्पर्य यह निकलता है। पूरे उद्यम से यदि सावधानीपूर्वक स्वकार्य की प्रवृत्ति की जाये तो इसमें सफलता प्राप्त होगी, होगी और अवश्य होगी। यह बात है। क्योंकि इसमें स्वाधीन पुरुषार्थ है।

यहाँ ऐसा नहीं है कि कोई पूर्वकर्म का बंधन बाधारूप हो, ऐसा नहीं है। चारों गति में सम्यक्दर्शन (होता है)। सातवीं नरक में गया होगा उसने कितने निकृष्ट कर्मबंधन किये होंगे? जो जीव सातवीं नरक में उत्पन्न हुआ है उसने कैसे भारी कर्मों का बंध किया होगा? फिर भी वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब यह जीव स्वकार्य में उद्यमवन्त होता है तब वह पूर्वकर्म के उदय से भिन्न हो सकता है। वर्तमान में यदि पुरुषार्थ किया जाये, वैसे तो सहज ही है लेकिन 'किया जाये तो' ऐसा कहा जाता है, तो पूर्वकर्म के उदय से अच्छी तरह भिन्न हो सकता है। भिन्न होकर अपने सिद्ध समान शुद्ध स्वरूप का अनुभव कर सकता है, अच्छी तरह कर सकता है।

मुमुक्षु :- संयोगों में है तो दुःख लेकिन खुशी मान लेते हैं।

पूज्य भाईश्री :- संयोगों में दुःख है मतलब संयोग प्रत्ययी परिणाम के कारण दुःख है। संयोगों की अनुकूलतारूप परिणाम से दुःख है और जो संयोगों को प्रतिकूल मानता है वह तो प्रत्यक्ष दुःखी होता ही है। वह तो दुःख की कल्पनावश ही परिणामन करता है।

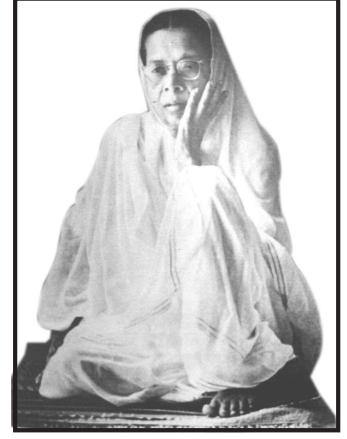
यह तो भगवान कहते हैं कि सुख की कल्पनापूर्वक परिणामन कर रहे जीव कहते हैं कि हमें तो सब प्रकार की अनुकूलताएँ प्राप्त हैं! कोई दिक्कत या तकलीफ नहीं है और जितने पासे फेंकते हैं सब सुलटे पड़ते हैं। (कृपालुदेव के पद में) आता है न ! 'पासा बधां सवळा पड़या, जन जाणीये मन मानीये नव काळ मूके कोईने।' जिसके उलटे

पासे भी सुलटे फलीभूत हो! ठीक! पुण्य के उदय अनुसार सब उदय स्वतः अपना स्थान ले लेते हैं। यहाँ जीव इसका धनी होकर सवार हो जाता है कि जैसे मैंने किया, मैंने अपनी बुद्धिचातुर्य से किया! जबकि इस बात में कोई दम नहीं है।

(कृपालुदेव ने) बहुत छोटी उम्र में यह काव्य लिखा था। 'जन जाणीये मन मानीये नव काळ मूके कोईने।' उस काव्य में सब ऐसे दृष्टांत लिये हैं कि जगत में पुण्यवन्त जीवों के अनेक भेद हैं। राजा है, सेठ लोग हैं, राजकीय लोग हैं - (ऐसे) सभी प्रकार लिए हैं। पूरी सत्ता मिली हो। परंतु इतनी तेजी से काल का प्रवाह चल रहा है कि एक सेकंड में असंख्य समय जाते हैं। करोड़ों, अरबों समय नहीं, अरबों के अरबों समय नहीं असंख्य समय जाते हैं। एक सेकंड में इतनी तेजी से काल का चक्र फिर रहा है कि जिसके आगे ये घड़ी के काँटे तो बहुत स्थूलरूप से फिरते हैं। इस काल के प्रवाह को कोई नहीं रोक सकता। सौ-पचास साल की जिंदगी में इतने प्रपंच में फँसता है कि आयुष्य पूरे होने के समय को आने में देर नहीं लगती है।

कहते हैं कि, वह जीव सुनहरा मौका चुक गया। ऐसी मनुष्य पर्याय में जहाँ सत् देव, शास्त्र, गुरु और सच्चे सिद्धांत, आत्मा का हित हो वैसे सर्व प्रकार का बाह्य वातावरण अनुकूल होने के बावजूद भी अपने हित के कार्य को छोड़कर अन्यत्र यानि कि अहित के कार्य में लगा तो इससे तो अहित ही होगा। इसे फिर मूर्ख न कहे, पागल न कहे तो और कहे भी क्या? ऐसा कहते हैं। वह जरूर मूर्ख है और अवश्य पागल है। यह २३३ (पूरा) हुआ।

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. ९-C



मुमुक्षु :- गुरुदेवने स्वघर में जाने को बहुत कहा है, लेकिन उस ओर एक एक निमट भी उपयोग (टिकता नहीं है)। दूसरे अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं वह वहाँ थँभने नहीं देते।

समाधान :- वह सब अनादि का अभ्यास है। अन्दर में जो संस्कार और राग पड़ा है वह सब खड़ा होता है। उससे (भिन्न होकर) स्वघर की ओर आने का प्रयत्न करना। यह सब जो अन्दर संस्कार और राग पड़ा है वह उत्पन्न होते हैं, लेकिन बारंबार उपयोग को (स्वघर की ओर) लाये बिना छुटकारा नहीं है। स्वघर ज्ञायक है उस ओर उपयोग को प्रयत्न करके, बार-बार छूट जाये तो भी बारंबार, प्रतिक्षण उस ओर दृढ़ किये बिना छुटकारा नहीं है। उपाय एक ही है-बार-बार चैतन्य की दृढ़ता करके निश्चय करना कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ। इस प्रकार बराबर दृढ़ता करके, उस ओर परिणति दृढ़ करके, परिणति दृढ़ करे, रुचि दृढ़ करे, फिर उपयोग झुकाने में देर लगे तो बार-बार उसे झुकाता रहे तो वह झुके बिना रहता नहीं। लेकिन उसे बार-बार झुकाना पड़ता है। क्योंकि अनादि के संस्कार है वह खड़े होते हैं। अनेक जात के विकल्प (उत्पन्न होते हैं)।

स्व की ओर रुचि लगे तो उपयोग भी उस ओर आये बिना रहता नहीं। अपनी रुचि अन्दर दृढ़ होनी चाहिये। निर्णय दृढ़ हो कि करने जैसा तो यही है, दूसरा कुछ करने जैसा नहीं है। ज्ञायक को पहचानना, ज्ञायक का स्वभाव पहचानकर उसमें परिणति को दृढ़ करनी, यही करना है। भेदज्ञान की धारा प्रगट करनी। उपयोग तो अंतर्मुहूर्त का होता है इसलिये पलटता रहता है, लेकिन रुचि और परिणति को दृढ़ करे तो उपयोग भी उस ओर आये बिना रहता नहीं। बार-बार, प्रतिक्षण उस ओर गये बिना छुटकारा नहीं है।

अशुभमेंसे शुभ में आये, द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार में आये, उसमें-से फिर मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक की ओर जाये, सभी विकल्पोंसे भिन्न मैं एक तत्त्व हूँ, ऐसा निर्णय करे और विकल्पसे छूटने का प्रयत्न करे तो होता है। छूटा जा सकता है और बहुत छूटे हैं, अनन्त जीव मोक्ष गये हैं वे सब इस भेदज्ञानसे ही गये हैं, जो गये हैं वे। ज्ञायक की परिणति दृढ़ करके गये हैं।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेव की भक्ति की अंतिम तीन पंक्तियों में आया-गंभीर तारी वाणीमां भावार्थ बहु राचता, .. जे जाणता जे भाव.. उस हृदय और भाव..

समाधान :- तेरी वाणी में अत्यंत गंभीरता और अनेक गहरे भावार्थ भरे हैं। ते जे हृदय तारुं.. तेरे हृदय को जो जानता है कि किस आशयसे कहा जाता है, वह आशय जाने तो वह वास्तव में आपके भाव को खींच लेता है। गुरुदेव के कहने का आशय क्या है, उसे ग्रहण करना चाहिये। गुरुदेव शब्द बोलते हैं लेकिन उनका वज़न कहाँ जाता है? उन्हें क्या कहना है? वह बराबर उनका हृदय जो जाने वही उनके भावको खींच सकता है। जहाँ निश्चय

वहाँ निश्चय, जहाँ व्यवहार वहाँ व्यवहार, इन दोनों की संधि कैसे है, गुरुदेव का हृदय क्या है यह जो जानता हो, वही उनके भावों को खींच सकता है।

गुरुदेव निश्चय दृष्टि की बात करते हो या अनादि कालसे खुदने स्वयं के स्वरूप को पहचाना नहीं है, तेरी दृष्टि पलट, निश्चय दृष्टि की बात करते हो.. क्योंकि अनादि कालसे वह निजघर की ओर आया नहीं है। वे कहते हो, परन्तु उसमें व्यवहार है ही नहीं ऐसा गुरुदेव का आशय नहीं होता। उसे बराबर समझना चाहिये। द्रव्यदृष्टि ज्ञायक पर जाये उसमें सब गौण होता है। उसकी दृष्टि में आता नहीं, लेकिन वह सब है ही नहीं, अशुद्धता हुई ही नहीं, ऐसा गुरुदेव का कहने का आशय नहीं है। वे जो भी चाहे जितने ज़ोरसे कहते हो फिर भी वह नहीं है यानि कि वह बिल्कुल है ही नहीं, ऐसा उनके कहने का आशय नहीं होता। वे ज़ोर देते हो (इसके पीछे आशय यह है कि) अनादि कालसे उसका पक्ष नहीं आया है, इसलिये उसे ज़ोरसे कहते हो। और मोक्ष में-मुक्ति में द्रव्यदृष्टि मुख्य रहती है। उसे मुख्य किये बिना साधना नहीं हो सकती। इसलिये ज़ोर देते हो तो भी अशुद्धता हुई ही नहीं, ऐसा उनका कहने का आशय नहीं होता। ऐसा समझना चाहिये और साधना की पर्याय में बीच में सब साधना आती है, चतुर्थ, पंचम सभी भूमिकाएँ आती हैं, ऐसा गुरुदेव का कहने का आशय है।

जब दूसरा प्रवचन करते हो, पद्मनंदि आदि का, वह भी कितने भावसे और कितने भक्तिभावसे करते हैं, उसके साथ मिलान करना चाहिये कि यदि उनको निषेध होता तो इतने भक्तिभावसे जो आता है (वह नहीं आता)। अतः उनके कहने का आशय अलग है। इसप्रकार उनका भाव बराबर खींचना चाहिये। उनके हृदय को जानकर।

मुमुक्षु :- .. हे माता! हे जनेता! दूसरी माँ नहीं करूँगा।

समाधान :- कैसा कहते हैं, हे माता! हे जनेता! अब दूसरी माँ नहीं करूँगा, कितने भावसे बोलते हैं।

मुमुक्षु :- जे हृदय तारुं जाणता ते भाव तारो..

समाधान :- ते भाव तारो खेंचता। वही आपके भाव को खींचता है। भक्तिसे बोले, हे भगवान!.. पद्मनंदि आचार्य कहते हैं, जब यह ऊँचे घने बादल के टूकड़े हो गये हो तो मैं ऐसा देखता हूँ कि इन्द्रोंने आपकी भक्ति करते समय तांडव किया उसमें हाथ ऊपर किये तो बादल के टूकड़े हो गये। ऐसी भक्ति आती है। और उस भक्ति को गुरुदेव अत्यंत भावसे कहते थे तो वह कुछ गलत नहीं कहते थे। ऐसी भक्ति आये बिना रहती नहीं, विकल्प में ऐसा शुभभाव आता है। लेकिन वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। इसप्रकार दोनों का मेल करना चाहिये। बीच में ऐसी भक्ति, जो वस्तु स्वरूप को प्राप्त हुए हैं, जो पूर्णता को प्राप्त हुए हैं और खुद को उसका प्रेम है कि आत्मा ऐसा पूर्ण स्वरूप महिमावंत है, उसे जिसने प्रगट किया उस पर जो साधक है उसे ऐसी भावना आये बिना रहती नहीं। इसप्रकार इन दोनों बातों का मेल करना चाहिये। एक को बिल्कुल निकाल देने का गुरुदेव का आशय नहीं था। एक पंक्ति आती है न? एकान्तथी अध्यात्ममां जे शुष्क थईने चालतो, तेने चाबुक मारीने व्यवहारमांही वाळतो। एकांतसे शुष्क होकर कुछ है ही नहीं, ऐसा गुरुदेव का कहने का आशय नहीं था।

मुमुक्षु :- चौरासी के अवतार में मरेगा..

समाधान :- हाँ। व्यवहारना भेदो घणां त्यां क्लेशने करतो नथी। ऐसा भी आता है। व्यवहार की बहुत अपेक्षाएँ हो वहाँ क्लेश में रुकते नहीं कि यह व्यवहार की बात है। लागी लगनवा आत्मनी। आत्मा की लगन लगी, वहाँ व्यवहार के भेदों में यानि कि इसका ऐसा ही है, ऐसे क्लेश में खड़े नहीं रहते। वस्तु स्वरूप मुख्य है इसप्रकार साधना साधते हैं। दोनों बात गुरुदेव में आती है। उसमें दोनों प्रकार की अपेक्षा की संधि करके समझना चाहिये।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- त्यां क्लेशने करतो नथी।

मुमुक्षु :- ऐसे भेद, बाकी निश्चय अनुसार मुनि को व्यवहार होता ही है।

समाधान :- इसप्रकार की बाह्य क्रियाओं में होता है। ऐसी बातों में क्लेश करना नहीं। बाकी अन्दर निश्चय के साथ तो व्यवहार होता है। सम्यग्दर्शन होता है वहाँ उसके शुभभाव में सच्चे देव-गुरु-शास्त्र होते हैं। कुदेव, कुगुरु नहीं होते, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र होते हैं। और पंचम गुणस्थान में अणुव्रत आदि के शुभभाव होते हैं और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र (होते हैं)। छठे-सातवें गुणस्थान में पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं। ऐसा सम्बन्ध होता है। और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र। ऐसा सम्बन्ध है। फिर वैसी बाहर की बात में गुरुदेव रुकते नहीं थे।

मुमुक्षु :- व्यवहार का बहुत पूछे तो कहे, व्यवहारे लख दोहलौ।

समाधान :- कोई न पामे हाथ रे..। गुरुदेव मुख्य द्रव्यदृष्टि का ज़ोर देकर (कहते थे)। क्योंकि अनादिकालसे उसने खुदने ग्रहण नहीं किया है, प्रगट नहीं हुआ है। इसलिये साधना में वह मुख्य होती है इसलिये उसकी बात बहुत आती है। परंतु उसका निषेध करके वह नहीं है ऐसा गुरुदेव का आशय नहीं है। दोनों की संधि का मिलान करना चाहिये। गुरुदेव के दोनों प्रकार के प्रवचन की संधि का मिलान करना चाहिये। जब वैराग्य की बात आती थी तो गुरुदेव कितने भावसे बोलते थे! अपूर्व अवसर आये तब कैसे बोलते थे! भगवान का दीक्षा कल्याणक हो उस वक्त कैसा उनका प्रवचन आता था!

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्वचर्चा मंगल वाणी-सी.डी. ९-D

समाधान :- गुरुदेव मंगल ही थे, सब तरह से मंगल थे।

मुमुक्षु :- कहान-चरणथी सुवर्णपुरनो उज्जवळ बन्यो इतिहास रे..

समाधान :- सुवर्णपुर का पूरा इतिहास उज्जवल हो गया।

मुमुक्षु :- .. ये तो ४५-४५ साल तक। तू भगवान है, ऐसे नादसे। अभी भी उसकी प्रतिध्वनि उठती है। तू भगवान है, तू भगवान है ऐसा नक्की कर।

समाधान :- सारा दिन गुरुदेव की वाणी की झनकार बजती ही रहती थी, जब विराजते थे तब। अभी भी प्रतिध्वनि उठती ही रहती है।

मुमुक्षु :- वही झनकार उठती रहती है।

समाधान :- इतने साल तक एक स्थान पर कोई सन्त बिराजे हो-गुरुदेव, ऐसा क्वचित् ही बनता है।

मुमुक्षु :- तीर्थकर तो विहार करते हैं, ये तो एक ही.. ऐसा तो बहुत ही कम देखने मिले। ४५-४५ साल तक एक ही..

समाधान :- सन्त बिराजे, निरंतर वाणी की वर्षा करे।

मुमुक्षु :- जाहिर में दिन में तीन-तीन बार..

समाधान :- तीन-तीन बार वाणी की वर्षा हो। गुरुदेव जहाँ भी विहार करे वहाँ सब जगह मंगल हो जाता। सब नगर में अतिशयता हो गयी। चारों प्रतिष्ठाएँ, कहीं मन्दिर नहीं थे वहाँ मन्दिर बन गये। इस ओर मन्दिर कहीं नहीं थे।

मुमुक्षु :- सब गाँव में मन्दिर बन गये।

समाधान :- सब गाँव में बन गये।

मुमुक्षु :- गुरुदेव पधारे तो पूरी नगरी बदल जाय। नायरोबी पधारे थे तब मानो..

समाधान :- पूरी नगरी बदल जाय। पूरा माहोल बदल जाय।

मुमुक्षु :- गुरुदेव नीकले तो सब खड़े रहकर देखने लग जाते। रथयात्रा नीकले तो देखे, ये कौन हैं महापुरुष? कभी देखा नहीं हो इसलिये।

मुमुक्षु :- सभी गाँव में स्वागत भी ऐसा ही होता था।

मुमुक्षु :- हम बालक का उद्धार कैसे हो?

समाधान :- कहाँ-से आये हैं?

मुमुक्षु :- उदयपुरसे।

समाधान :- आत्मा को पहचाने तो उद्धार हो। ये आत्मा अन्दर भिन्न बिराजता है। यह शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न है। आत्मा अनन्त गुणसे भरा है उसे पहचाने तो उद्धार हो। उसे अंतरसे भिन्न जानना चाहिये। ये सब विभाव राग-द्वेष आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा का स्वरूप भिन्न है। आत्मा सिद्ध भगवान जैसा है। ऐसे आत्मा को पहचाने तो उद्धार हो। जन्म-मरण, भव का अभाव आत्मा को पहचाने तो हो। मात्र बाहरसे नहीं होता, आत्मा को पहचानना चाहिये। उसके लिये विचार, वांचन करे लेकिन आत्मा कैसे पहचाना जाये, ऐसा ध्येय होना चाहिये आत्मा को पहचानने का।

मुमुक्षु :- आत्मा की पहचानसे गुरुदेव की सच्ची महिमा आ जायेगी?

समाधान :- आत्मा को पहचाने तो गुरुदेव की सच्ची महिमा आये। खुद को पहचाने वह गुरु को पहचानता है। गुरु को पहचाने वह खुद को पहचानता है। शास्त्र में आता है, भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को पहचाने वह अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को पहचानता है। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को पहचाने वह भगवान को पहचानता है। ऐसे आत्मा को पहचाने वह गुरु को पहचानता है। इसलिये आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय कैसे है उसे बराबर विचारकरके पहचाने तो आत्मा का कल्याण होता है। आत्मा को पहचानना चाहिये। उसके लिये गुरुने क्या कहा है? गुरुने क्या मार्ग बताया है उसका विचार करना चाहिये। शास्त्र में (कहा है) उसका गुरुने क्या अर्थ किया है? सब विचारकर स्वयं अंतर में वैसी श्रद्धा करके उसरूप परिणति करे तो भव का अभाव होता है।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (जून-२०२१) का शुल्क श्री जवेरीभाई सावला, मुंबई के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

सबसे न्यारा अगम है, वो ज्ञानीका देश ॥४॥
 जप, तप और व्रतादि सब, तहाँ लगी भ्रमरूप ।
 जहाँ लगी नहि संतकी, पाई कृपा अनूप ॥५॥
 पायाकी ए बात है, निज छंदनको छोड़ ।
 पिछे लाग सत्पुरुषके, तो सब बंधन तोड़ ॥६॥

तृषातुरको पिलानेकी महेनत कीजिये।

अतृषातुरमें तृषातुर होनेकी अभिलाषा उत्पन्न कीजिये। जिसमें वह उत्पन्न न हो सके उसके लिये उदासीन रहिये। आपका कृपापत्र आज और कल मिला था। स्याद्वादकी पुस्तक खोजनेसे नहीं मिली। कुछ एक वाक्य अब फिर लिख भेजूंगा।

उपाधि ऐसी है कि यह काम नहीं होता। परमेश्वरको पुसाता न हो तो इसमें क्या करें? विशेष फिर कभी।

वि.आ.रायचंदके प्रणाम

(पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजीके वचनामृत...)

और ग्रहण करने में वस्तु प्रत्यक्ष होती है। सुनते रहने और सोचते रहनेसे तो वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। (स्वरूप) ग्रहण करने का (- अपने अस्तित्व को रुचिपूर्वक वेदन करने का) ही अभ्यास शुरू होना चाहिए। (मुमुक्षुजीव को सामान्य भावना से तत्त्वविचार चलता है। सोचना-विचारना तो बहिर्मुख भाव हैं, इसमें वस्तु परोक्ष रहती है; और ऐसेमें स्वयंके महान् अस्तित्व की जागृति नहीं होती। किन्तु स्वरूप की अनन्य रुचिसे 'ज्ञानमात्र' के वेदन से प्रत्यक्ष तौरसे अस्तित्व ग्रहण का प्रयास होना चाहिए-ऐसे प्रयास से अंतर्मुखता प्राप्त होती है।) ४५४.

प्रश्न : नज़रमें तो पर पदार्थ आते हैं, स्व वस्तु नजरमें नहीं आती, तो क्या करना?

उत्तर : जिस क्षेत्रमें नज़रका परिणमन हो रहा है, उसी आखे के आखे (पूरे के पूरे) क्षेत्रमें वस्तु पड़ी है। जहाँसे नजर उठती है...वही वस्तु है। अतः नज़र जहाँसे उठती है...वहीं वस्तुको ढूँढ़ लो ! ४५८.

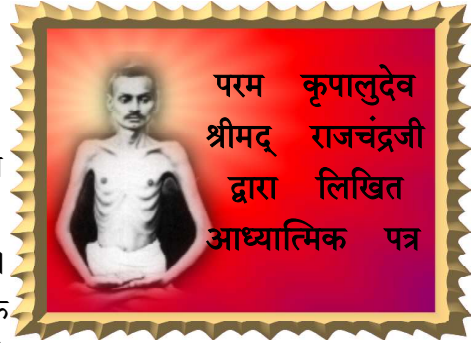
२५६

बंबई, आषाढ वदी २, १९४७

‘अथाह प्रेमसे आपको नमस्कार’

विस्तारसे लिखे हुए दो पत्र आपकी ओरसे मिले। आप इतना परिश्रम उठाते हैं यह हमपर आपकी कृपा है।

इनमें जिन जिन प्रश्नोंका उत्तर पूछा है वे समागममें जरूर देंगे। जीवके बढ़नेकी घटनेके विषयमें, एक आत्माके विषयमें, अनंत आत्माके विषयमें, मोक्षके विषयमें और मोक्षके अनंत सुखके विषयमें, आपको इस बार समागममें सभी प्रकारसे निर्णय बता देनेका सोच रखा है। क्योंकि इसके लिये हमपर हरिकी कृपा हुई है, परंतु वह मात्र आपको बतानेके लिये; दूसरोंके लिये प्रेरणा नहीं की है।



२५७

बंबई, आषाढ वदी, ४ १९४७

यहाँ ईश्वरकृपासे आनन्द है। आपका पत्र चाहता हूँ।

बहुत कुछ लिखना सूझता है, परन्तु लिखा नहीं जा सकता। उनमें भी एक कारण समागम होनेके बाद लिखनेका है। और समागमके बाद लिखने जैसा तो मात्र प्रेम-स्नेह रहेगा, लिखना भी वारंवार आकुल होनेसे सूझता है। बहुतसी धाराएँ बहती देखकर, कोई कुछ पेट देने योग्य मिले तो बहुत अच्छा हो, ऐसा प्रतीत हो जानेसे, कोई न मिलनेसे आपको लिखनेकी इच्छा होती है। परन्तु उसमें उपर्युक्त कारणसे प्रवृत्ति नहीं होती।

जीव स्वभावसे (अपनी समझकी भूलसे) दूषित है; तो फिर उसके दोषकी ओर देखना, यह अनुकंपाका त्याग करने जैसी बात है, और बड़े पुरुष ऐसा आचरण करना नहीं चाहते। कलियुगमें असत्संगसे और नासमझीसे भूलभरे रास्तेपर न जाया जाये, ऐसा होना बहुत मुश्किल है; इस बातका स्पष्टीकरण फिर होगा।

२५८

बंबई, आषाढ, १९४७

ॐ

सत्

बिना नयन पावे नहीं, बिना नयनकी बात ।

सेवे सद्गुरुके चरन, सो पावे साक्षात् ॥१॥

बूझी चहत जो प्यासको, है बूझनकी रीत ।

पावे नहि गुरुगम बिना, एही अनादि स्थित ॥२॥

एही नहि है कल्पना, एही नहीं विभंग ।

कई नर पंचमकालमें, देखी वस्तु अभंग ॥३॥

नहि दे तुं उपदेशकुं, प्रथम लेहि उपदेश ।